अथ

शिक्षा-सूत्राणि

आपिशलि-पाणिनि-चन्द्रगोमि-विरचितानि

सम्पादकः—

युधिष्ठिर मीमांसक

प्रकाशकः—

भारतीय-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान

३२/१३८१ अलवर गेट, अजमेर

मुद्रकः—

श्रीकृष्ण असावा, गायत्री मुद्रण

पटवां गली, अजमेर



तीयवार

१०००

संवत् २०२४

अजिल्द १-५०

सजिल्द २-५०

प्रकाशकीय

आचार्य आपिशलि पाणिनि और चन्द्रगोमी विरचित शिक्षासूत्रों का प्रथम प्रकाशन हमने संवत् २००५ में किया था। यह सूत्रपाठ चिरकाल से दुर्लभ हो चुका था, परन्तु कई कारणों से हम शीघ्र इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित नहीं कर सके।

हमें इस बात का हर्ष है कि इस बार हमने पाणिनीय शिक्षासूत्रों का पूरा पाठ बड़े प्रयत्न से सम्पादित करके प्रकाशित किया है। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा लगभग ८७ वर्ष पूर्व प्रकाशित पाणिनीय शिक्षासूत्रों के विषय में विद्वानों में जो विवाद था, उस का भी हमने संक्षेप से इसकी भूमिका में उत्तर दिया है।

विदुषां वशंवदः—
युधिष्ठिर मीमांसक

भूमिका

वेद के छः अङ्गों में शिक्षा प्रथम अङ्ग है। बालकों की शिक्षा का आरम्भ इसी शास्त्र से होता है। आजकल वर्णों के यथातथ उच्चारण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। इस कारण वर्णों के उच्चारण में बहुविध दोष देखने में आते हैं। वर्णों के ठीक ठीक उच्चारण की ओर बचपन में ही ध्यान न दिया जाए तो यह दोष महाविद्वान् हो जाने पर भी आजन्म बना रहता है। इसलिए वर्णों के ठीक ठीक उच्चारण की ओर प्रत्येक माता पिता आचार्य को पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए। वर्णों के यथातथ उच्चारण न होने से वक्ता जिस अभिप्राय से शब्दों का उच्चारण करता है, श्रोता उस अर्थ को ग्रहण करने में असमर्थ रहता है। अत एव प्राचीन आचार्यों ने कहा है—

शब्दो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

इसी प्रकार अन्यत्र भी कहा है—

स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृत् शकृत्।

अर्थात् स्वजन (=अपना व्यक्ति) को यदि कोई 'श्वजन' इस प्रकार उच्चारण करे तो उसका अर्थ होगा 'कुत्ते का सम्बन्धी', सकल (=सम्पूर्ण) का उच्चारण 'शकल' किया जाए तो अर्थ हो जाएगा 'टुकड़ा'। इसी प्रकार यदि सकृत् (एक बार) के स्थान पर 'शकृत्' उच्चारण हो जाए तो उसका अर्थ होगा 'मैला' (विष्ठा—पाखाना)।

इसी प्रकार यदि अश्व (= घोड़ा) के स्थान पर 'अस्व' उच्चारण किया जाए तो अर्थ होगा 'अपना नहीं' (न स्वः=अस्वः)। इसी प्रकार शास्त्री को 'सास्त्री' बोला जाए तो अर्थ हो जाएगा 'वह स्त्री'।

इन कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट है कि वर्णों के यथातथ रूप से उच्चारण न करने से कितना अर्थान्तर हो जाता है। इतना ही नहीं, समस्त बोलियों की उत्पत्ति का यदि इतिहास देखा जाए तो ज्ञात होगा कि एक से दूसरी बोली की उत्पत्ति में वर्णोच्चारण सम्बन्धी दोषों का ही प्रमुख हाथ है।

इसलिए प्राचीन ऋषि मुनि और आचार्यों ने वर्णों के यथातथ उच्चारण की रक्षा के लिए वर्णोच्चारण सम्बन्धी अनेक शिक्षा ग्रन्थ लिखे। इतना ही नहीं, उन्होंने इस अतिस्वल्पकाय शास्त्र को इतना महत्त्वपूर्ण समझा कि वेद के छ अङ्गों में इसे प्रथम स्थान दिया।

इस समय शिक्षा सम्बन्धी जो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उनकी संख्या १०० से ऊपर है। इनमें से लगभग ४० ग्रन्थ छप चुके हैं, शेष अभी तक हस्तलिखित रूप में ही प्राचीन संग्रहालयों में सुरक्षित पड़े हैं।

सम्प्रति जितने शिक्षा ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें अधिक संख्या वेद की विभिन्न संहिताओं और शाखाओं से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों की है। लोक-वेद-साधारण अथवा सामान्य वर्णोच्चारण से सम्बन्ध रखने वाले तीन ही शिक्षा ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध होते हैं। उनके नाम हैं—आपिशल-शिक्षा, पाणिनीय-शिक्षा, चान्द्र-शिक्षा।

आचार्य आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी ने अपने अपने जो शब्दानुशासन लिखे वे भी लोकवेद-साधारण ही थे।[1] इन उक्त तीनों शिक्षा ग्रन्थों का अपने अपने व्याकरण के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह भी इनके शिक्षा और व्याकरण ग्रन्थों के परिशीलन से स्पष्ट है।

आपिशल-शिक्षा

महामुनि आपिशलि प्रोक्त शिक्षा चिरकाल से अप्राप्य थी। केवल प्राचीन ग्रन्थों में यत्र तत्र आपिशलशिक्षा का उल्लेख उपलब्ध होता था। लगभग ३२ वर्ष हुए श्रीमान् डा० रघुवीरजी एम० ए० संस्थापक 'सरस्वती-विहार' देहली ने अडियार (मद्रास) के पुस्तकालय से इस शिक्षा के दो हस्तलेख प्राप्त करके इसका सम्पादन किया। यह शिक्षा उनके द्वारा सम्पादित और मेहरचन्द लक्ष्मणदास हिन्दी-संस्कृत-पुस्तक विक्रेता लाहौर द्वारा प्रकाशित 'वैदिक स्टडीज' में प्रकाशित हुई।

---

१. आपिशलि प्रोक्त व्याकरण के जो सूत्र उपलब्ध हुए हैं, उनसे आपिशल व्याकरण का लोकवेद-साधारणत्व स्पष्ट है। पाणिनीय व्याकरण का लोकवेद-साधारणत्व सुप्रसिद्ध है। चान्द्र व्याकरण में भी स्वरवैदिकी प्रक्रिया विद्यमान थी, वह उसकी टीका में यत्र तत्र उपलब्ध स्वरवैदिकी प्रक्रिया सम्बन्धी सूत्रों से स्पष्ट है। इस विषय में हमने अपने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में विस्तार से लिखा है। वहां अनेक प्रमाणों से दर्शाया है कि चान्द्र व्याकरण में पहले ८ अध्याय थे, उनमें से स्वरवैदिक प्रक्रिया सम्बन्धी दो अध्याय उत्तरकाल में लुप्त हो गए।

आचार्य पाणिनि ने वा सुप्यापिशलेः (६, १, ९२) सूत्र में आचार्य आपिशलि का साक्षात् उल्लेख किया है। इस से स्पष्ट है कि आचार्य आपिशलि पाणिनि से पूर्ववर्ती है। कितना पूर्ववर्ती है, यह कहना कठिन है।

आचार्य आपिशलि ने व्याकरण शास्त्र का भी प्रवचन किया था, यह पाणिनि के उक्त निर्देश से ही स्पष्ट है। आपिशलि के शब्दानुशासन में भी आठ अध्याय थे। यह अभिनव शाकटायन व्याकरण की अमोघा वृत्ति के **अष्टका आपिशलपाणिनीयाः** उदाहरण से स्पष्ट है।

आपिशल व्याकरण के जो सूत्र उपलब्ध हुए हैं वे पाणिनीय शब्दानुशासन के सूत्रों के साथ बहुत सादृश्य रखते हैं। इसी प्रकार आपिशल-शिक्षा और पाणिनीय-शिक्षा के सूत्र भी परस्पर बहुत सदृश हैं, कुछ साधारण सी भिन्नता है।

आपिशलि आचार्य ने अपने व्याकरण से सम्बद्ध धातुपाठ और गणपाठ आदि परिशिष्टों का भी प्रवचन किया था। उसके धातुपाठ और गणपाठ सम्बन्धी अनेक उदाहरण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। हमारा विचार है कि उपलब्ध पञ्च-पादी उणादि आपिशलि द्वारा प्रोक्त हैं (द्र० सं० व्या० शास्त्र का इतिहास भाग २, उणादि प्रकरण)

आपिशलि द्वारा प्रोक्त व्याकरण और उसके परिशिष्ट तथा काल आदि के सम्बन्ध में हमने अपने 'संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में विस्तार से लिखा है। जो महानुभाव इस विषय में जानना, चाहें वह हमारे उक्त इतिहास के उन उन प्रकरणों में देखें।

आपिशल-शिक्षा के उद्धरण—आपिशल-शिक्षा के उद्धरण निम्न ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं—

१—राजशेखर ने काव्यमीमांसा के शास्त्रनिर्देश नामक द्वितीय अध्याय में लिखा है—

तत्र वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिः निष्पत्तिनिर्णायिनी शिक्षा आपिशलीयादिका।

२—भर्तृहरि ने वाक्यपदीय की स्वोपज्ञटीका[1] (लाहौर संस्क०) पृष्ठ १०४

---

१. वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड की स्वोपज्ञ टीका का वृषभदेवीय व्याख्या सहित एक अभिनव संस्करण डक्कन कालेज पूना से प्रकाशित हुआ है। इस का सम्पादन श्री के० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर (लखनऊ) ने किया है। इस संस्करण में वृषभदेवीय टीका प्रथम वार समग्र रूप में प्रकाशित हुई है। कई स्थानों पर इस संस्करण के पाठ लाहौर संस्करण से अच्छे हैं। इस संस्करण में उक्त पाठ १७६ पृष्ठ पर है।

में अष्टम प्रकरण का नाभिप्रदेशात् सूत्र उद्धृत किया है। स्वोपज्ञ टीका के व्याख्याता वृषभदेव ने इसे आपिशलीय-शिक्षा का वचन बताया है। यदि वृषभदेव का व्याख्यान किसी प्राचीन व्याख्या के आधार पर आधृत हो तो मानना पड़ेगा कि भर्तृहरि ने आपिशल शिक्षा का उक्त सूत्र अक्षरशः न पढ़कर अर्थतः अनुवाद किया है।

३—आचार्य हेमचन्द्र ने हैमशब्दानुशासन (१, १, १७) की स्वोपज्ञ बृहद् वृत्ति और बृहन्न्यास में आपिशलि का नामोल्लेख पूर्वक अष्टम प्रकरण के २३ सूत्र और बिना नाम निर्देश के अन्य १४-१५ सूत्र उद्धृत किए हैं।

४—तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के 'वैदिकाभरण' नामक टीका के लेखक गार्ग्य गोपाल ने नामनिर्देश पूर्वक तथा बिना नामनिर्देश के आपिशलि शिक्षा के कई सूत्र उद्धृत किए हैं।

५—गोण्डल (सौराष्ट्र) की 'रसशाला' नामक आयुर्वेद प्रतिष्ठान के हस्तलेखों के संग्रह में 'शब्दभाष्य'[1] नाम से स्मृत ग्रन्थ का कुछ प्रारम्भिक भाग है। उसमें शिक्षा के प्रकरण ३ तथा ८ के अनेक सूत्र उद्धृत हैं (द्र० पत्रा ३, ४, ५,)। यद्यपि ये सूत्र आपिशल और पाणिनीय दोनों शिक्षा-सूत्रों से साम्य रखते हैं, परन्तु पत्रा ५ के पृष्ठ 'क' पर—'प्रागुक्तं तु मतान्तरम्, न पाणिनीयम्' लेख मिलता है। उससे ज्ञात होता है कि शब्दभाष्य में स्मृत सूत्र आपिशल शिक्षा के हैं, पाणिनीय नहीं हैं। इतना ही नहीं, शब्दभाष्य में स्मृत शिक्षासूत्रों का पाठ पाणिनीय सूत्रों की अपेक्षा आपिशल शिक्षा से अधिक साम्य रखते हैं।

इनके अतिरिक्त काशिका, न्यास, पदमञ्जरी और शब्दकौस्तुभ आदि ग्रन्थों में भी शिक्षा के अनेक सूत्र उद्धृत हैं। ये सूत्र आपिशल शिक्षा से उद्धृत किए गए अथवा पाणिनीय शिक्षा से यह कहना यद्यपि कठिन है तथापि आपिशल और पाणिनीय शिक्षा में जहां कुछ भिन्नता है, वहां ये सूत्र पाणिनीय शिक्षा सूत्रों से अधिक मिलते हैं। अतः हमारे विचार में उक्त ग्रन्थों में उद्धृत शिक्षासूत्र पाणिनीय शिक्षा से ही उद्धृत किए गए हैं। इतना ही नहीं, उक्त ग्रन्थ पाणिनीय व्याकरण के ही हैं अतः उनमें नाम निर्देश के बिना उद्धृत शिक्षासूत्र भी पाणिनीय ही होने चाहिएं।

वाक्यपदीय, हैम बृहद्वृत्ति, हैम बृहन्न्यास, वैदिकाभरण टीका और शब्द-भाष्य में उद्धृत आपिशल शिक्षासूत्रों का हमने यथास्थान निर्देश कर दिया है।

---

१. ग्रन्थ के पत्रों पर "श भा" संकेत लिखा है, उसी के आधार पर सूचीपत्र बनाने वाले ने उक्त नाम की कल्पना की है।

पाणिनीय शिक्षा

पाणिनीय शिक्षा के सम्प्रति दो प्रकार के पाठ मिलते हैं एक सूत्रात्मक और दूसरा श्लोकात्मक। सूत्रात्मक और श्लोकात्मक पाठ के भी लघु और वृद्ध दो प्रकार के पाठ हैं

आधुनिक पाणिनीय वैयाकरणों में पाणिनीय शिक्षा का श्लोकात्मक पाठ ही प्रसिद्ध है और वैदिक भी वेदाङ्ग अन्तर्गत श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा का ही पाठ करते हैं। श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा के लघुपाठ में ३५ श्लोक और वृद्धपाठ में ६० श्लोक हैं। लघुपाठ याजुष पाठ कहाता है और वृद्धपाठ ऋक्पाठ।

सूत्रात्मक शिक्षा के भी लघु और वृद्ध दो पाठ हैं। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सं० १९३६ के मध्य में प्रयाग से पाणिनीय शिक्षा सूत्रों का जो हस्तलेख प्राप्त किया था वह पाठ लघुपाठ है। स्वामी दयानन्द सरस्वती को प्राप्त शिक्षासूत्र का हस्तलेख अन्त में त्रुटित था। अतः उसमें अष्टम प्रकरण का प्रथम सूत्र भी अपूर्ण ही है। मध्य में भी कहीं कहीं पर लेखक प्रमाद से कुछ सूत्र छूटे हुए प्रतीत होते हैं। पाणिनीय शिक्षा सूत्रों का जो पूर्ण पाठ हम छाप रहे हैं वह वृद्धपाठ है। यह बात दोनों पाठों की तुलना से स्पष्ट हो जाती है।

मूल-पाठ—पाणिनीय शिक्षा के श्लोकात्मक और सूत्रात्मक जो दो प्रकार के पाठ मिलते हैं उनमें पाणिनि-प्रोक्त मूलपाठ कौनसा है इसका अति संक्षिप्त विवेचन किया जाता है।

श्लोकात्मिका पाणिनीय शिक्षा का प्रथम श्लोक है—

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा।

इस वचन से स्पष्ट है कि श्लोकात्मिका शिक्षा मूलतः पाणिनि-प्रोक्त नहीं है। वह तो किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पाणिनीय मत के अनुसार बनाई गई है। श्लोकात्मिका पाणिनीय शिक्षा के प्रकाशनाम्नी टीका के रचयिता के मत में इसका प्रवक्ता पाणिनि का अनुज आचार्य पिङ्गल है।[1] इस प्रकार ग्रन्थ की अन्तः साक्ष्य और टीकाकार

---

१. ज्येष्ठ भ्रातृभिर्विहितो व्याकरणेऽनुजस्तत्र भवान् पिङ्गलाचार्यः तन्मतमनुभाव्य शिक्षां वक्तुं प्रति जानीते—अथ शिक्षामिति।

के साक्ष्य से सर्वथा स्पष्ट है कि श्लोकात्मिका पाणिनीय शिक्षा चाहे उसका लघु याजुष पाठ हो, चाहे वृद्ध आर्च पाठ, दोनों ही मूलतः पाणिनि प्रोक्त नहीं हैं। श्लोकात्मिक पाणिनीय शिक्षा का पाणिनि प्रोक्त मूल ग्रन्थ इनसे भिन्न है। हमारा मत है कि पाणिनीय श्लोकात्मिका शिक्षा का मूल पाणिनीय सूत्रात्मिक शिक्षा है।[1]

श्लोकात्मिका पाणिनीय शिक्षा के पठन पाठन में अधिक प्रयुक्त होने के कारण सूत्रात्मक पाठ लुप्त हो गया, हस्तलेख भी अप्राप्य हो गए। श्लोकात्मिका शिक्षा मूलतः पाणिनि प्रोक्त नहीं है इस तथ्य की ओर सबसे पूर्व इस युग में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती का ध्यान गया। उन्होंने मूलभूत पाणिनीय शिक्षा की प्राप्ति के लिए महान् प्रयत्न किया। अन्ततः वि. सं. १९३६ के मध्य में प्रयाग के एक ब्राह्मण के गृह से पाणिनीय शिक्षा सूत्र का एक हस्तलेख मिला। यद्यपि वह हस्तलेख भी अधूरा था, अन्त के एक या दो पत्र नष्ट हो चुके थे, पुनरपि स्वामी दयानन्द की यह उपलब्धि शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण थी। उन्होंने उपलब्ध शिक्षासूत्रों को आर्यभाषा व्याख्या सहित सं० १९३६ के अन्त में वर्णोच्चारण शिक्षा के नाम से प्रकाशित किया।[2]

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती को प्राप्त हुए शिक्षासूत्रों का दूसरा हस्तलेख चिरकाल तक विद्वानों को उपलब्ध नहीं हुआ। इस कारण श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षासूत्रों के पाणिनीयत्व में विद्वानों को शङ्का बनी ही रही। दैव योग से श्री डा० रघुवीरजी को अडियार (मद्रास) के पुस्तकालय से आपिशल शिक्षासूत्रों के दो हस्तलेख उपलब्ध हो गए। उन्होंने उनके साथ स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षासूत्रों की तुलना करके स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षासूत्रों के पाणिनीयत्व की स्थापना की। इस विषय में उन्होंने कुछ लेख लिखे।

इसके पश्चात् सन् १९३८ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से मनमोहन घोष एम० ए० सम्पादित 'पाणिनीय शिक्षा' नाम का एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

---

१. आपिशल शिक्षा का भी एक श्लोकात्मक पाठ है। उसका आरम्भ का वचन है—अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि मतमापिशलेर्मुनेः।

इस श्लोकात्मिका शिक्षा के १९ श्लोक उपलब्ध हुए थे। इन्हें भी डा० रघुवीरजी ने आपिशल शिक्षासूत्रों के पश्चात् छापा था।

२. इस विषय में जो अधिक जानना चाहें वे हमारे 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ में देखें।

इसकी बृहद् भूमिका में मनोमोहन घोष ने सारा प्रयत्न इस बात की सिद्धि के लिए लगाया कि पाणिनीय शिक्षा का श्लोकात्मक पाठ ही पाणिनि द्वारा प्रोक्त है, स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित सूत्रपाठ पाणिनीय नहीं है। इस प्रसंग में आपने डा० रघुवीर के लेख की आलोचना के साथ साथ सूत्रात्मक पाठ को दयानन्द द्वारा कल्पित पाठ सिद्ध करने की भरपूर चेष्टा की।

मनोमोहन घोष के उक्त भूमिकास्थ लेख की विस्तृत आलोचना हमने **मूल पाणिनीय शिक्षा** इस शीर्षक से पटना की 'साहित्य' नाम्नी पत्रिका के सन् १९५९ अङ्क १ में प्रकाशित की। उसमें मनोमोहन घोष के सभी हेत्वाभासों का सप्रमाण निराकरण किया और श्लोकात्मिका शिक्षा को पाणिनीय मानने पर अष्टाध्यायी से जो विरोध आते हैं उनका उल्लेख करके सूत्रात्मक पाठ का पाणिनीयत्व सिद्ध किया। जो पाठक इस विषय में रुचि रखते हैं, वे हमारा उक्त लेख पढ़े।

आपिशल और पाणिनीय शिक्षा

पाणिनीय शिक्षा के सूत्र आपिशल शिक्षा के सूत्रों के साथ बहुत साम्य रखते हैं। अतः आपिशल शिक्षा सूत्रों की उपलब्धि पर यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक हो गया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षासूत्र पाणिनीय हैं अथवा आपिशल। दोनों के सूत्रपाठों की तुलना से इतना तो स्पष्ट है कि दोनों का पाठ प्रायः समान है, परन्तु जहां परस्पर में वैषम्य है वह प्रवक्तृ भेद के कारण है अथवा पाठान्तरमूलक है। यद्यपि कुछ वैषम्य पाठान्तर मूलक कहे जा सकते हैं, पुनरपि कुछ पाठ ऐसे अवश्य हैं जो प्रवक्तृभेद के कारण ही हैं। यथा—

आपिशल पाठ	**पाणिनीय पाठ**
ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः।	**ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः।**
विवृतकरणाः स्वराः।	**विवृतकरणा वा।**
	विवृतकरणाः स्वराः।

पाणिनीय पाठ में ऊष्म वर्णों का पक्षान्तर में विवृतकरण प्रयत्न कहा है, वह आपिशल पाठ में नहीं है। पाणिनीय अष्टाध्यायी में एक सूत्र है **नाज्झलौ** (१।१।१०)। इस सूत्र द्वारा पूर्व **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** (१।१।९) सूत्र से प्राप्त अचों और हलों की (अ इ ऋ ऌ की क्रमशः ह श ष स के साथ) सवर्ण संज्ञा का निषेध किया है। उक्त हलों और अचों की सवर्ण संज्ञा तभी हो सकती है यदि स्वरों के और ऊष्मों के आभ्यन्तर प्रयत्न समान हों। दोनों के आभ्यन्तर प्रयत्न की समानता **विवृतकरणा वा** इस पाणिनीय सूत्र से ही सिद्ध है। आपिशल शिक्षा में उक्त सूत्र न होने से अज्झलों की सवर्ण संज्ञा ही प्राप्त नहीं होती।

इसके अतिरिक्त दोनों शिक्षा सूत्रों के निम्न पाठ भी द्रष्टव्य हैं—

आपिशल पाठ	पाणिनीयपाठ
ञमङणनाः स्वस्थाना नासिकास्थानाः (१।१९)	ङञणनमाः स्वस्थान-नासिकास्थानाः (१।२१)
स्पर्शयमवर्णकारो········(५।१)	स्पर्शवर्णकरो········।
अन्तस्थवर्णकारो········(५।२)	अन्तस्थवर्णकरो········
ऊष्मस्वरवर्णकारो····(५।३)	ऊष्मस्वरवर्णकरो····।

इनमें से प्रथम उद्धरण में 'ञमङणनाः' निर्देश उणादि **ञमन्ताड्डः** (१।११४) सूत्र में प्रयुक्त ञम् प्रत्याहार के अनुरूप **ञमङणनम्** प्रत्याहार सूत्रानुसारी है। हमने अपने 'संस्कृत व्याकरण के इतिहास' में सप्रमाण दर्शाया है कि पञ्चपादी उणादि आपिशलि प्रोक्त है और उसमें प्रयुक्त 'ञम्' प्रत्याहार की दृष्टि से प्रत्याहार सूत्र में निर्दिष्ट **ञमङणन** क्रम आपिशलि द्वारा उपज्ञात है और यही क्रम उसके शिक्षासूत्र में भी है। पाणिनीय सूत्र में वर्गक्रम से पाठ है।

अगले उद्धरणों में **कार** और **कर** का भेद है।[1] पाणिनीय **कर** पाठ पाणिनि के **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु** (३।२।२०) सूत्र के अनुसार है और **कार** पाठ में औत्सर्गिक अण् की कल्पना करनी पड़ती है।

इन भेदों के अतिरिक्त पाणिनीय शिक्षा में आपिशल शिक्षा की अपेक्षा निम्न सूत्र अधिक हैं—

कण्ठ्यान् आस्यमात्रान् इत्येके ।१।७।

दन्तमूलस्तु तवर्गः ।१।११।।

विवृतकरणा वा ।३।८।।

तीन सूत्रों का आधिक्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित लघुपाठ से दर्शाया है। हम पूर्व कह चुके हैं कि उक्त हस्तलेख में मध्य मध्य में लेखक प्रमाद से कुछ सूत्र नष्ट हुए हैं। इनके अतिरिक्त सप्तम प्रकरण में चार सूत्र ऐसे हैं जो आपिशलीय शिक्षा में नहीं है (हमारे द्वारा प्रकाशित वृद्ध पाठ में भी नहीं हैं)। वृद्धपाठ में तो उक्त तीन सूत्रों के अतिरिक्त ७-८ सूत्र और ऐसे हैं जो आपिशल शिक्षा में नहीं हैं।

इस संक्षिप्त विवेचना से स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द द्वारा प्रकाशित शिक्षा सूत्र पाणिनीय ही हैं।

---

१. पाणिनि के शिक्षासूत्र के वृद्ध पाठ में 'कार' पाठ मिलता है।

अब हम एक ऐसा प्रमाण भी उपस्थित करते हैं जिससे स्पष्ट हो जाएगा कि ये सूत्र प्राचीन ग्रन्थकारों द्वारा पाणिनि के नाम से स्मृत भी हैं। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के 'त्रिरत्न-भाष्य' नामक व्याख्या का रचयिता सोमयार्य लिखता है—

सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति इति पाणिनीयेऽपि। मैसूर संस्क० पृष्ठ ४५०

इस प्रमाण की उपस्थिति में पाणिनीय शिक्षा सूत्रों के सम्बन्ध में कोई विवाद उठ ही नहीं सकता। अब हम उसके वृद्धपाठ के विषय में लिखते हैं—

पाणिनीय शिक्षासूत्र का वृद्धपाठ—पाणिनीय शिक्षा सूत्रों का जो वृद्ध पाठ हम इस संस्करण में प्रकाशित कर रहे हैं, उसकी उपलब्धि की कथा भी विचित्र है। वह इस प्रकार है—

सन् १६३६ में 'दि इण्डियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट' कलकत्ता से आपिशली शिक्षा के नाम से एक शिक्षा प्रकाशित हुई। पुस्तक के मुख पृष्ठ पर 'अध्यापक अमूल्यचरण विद्याभूषण कर्तृक सम्पादित और अनूदित' शब्द छपे हुए हैं। इस में बंगला अनुवाद तो अवश्य है परन्तु सम्पादन के नाम पर किया जाने वाला कोई भी प्रयत्न इसमें नहीं है। हां, तीन स्थानों पर (?) इस प्रकार कोष्ठक में प्रश्न चिह्न अवश्य उपलब्ध होते हैं। अस्तु हमारे लिए तो यह प्रयत्नाभाव भी वरदान-रूप सिद्ध हुआ। उक्त ग्रन्थ को देखने से विदित होता है कि मुद्रित ग्रन्थ उपलब्ध हस्तलेख की अक्षरशः प्रतिलिपि मात्र है और वह लेखक प्रमाद से बहुत भ्रष्ट हो गया है, पाठ स्थान स्थान पर खण्डित और आगे पीछे हो रहा है।

हमारी दृष्टि में यह ग्रन्थ सन् १९५३ में आया। इस पर 'आपिशली शिक्षा' नाम छपा होने से चिरकाल तक हमने इस पर ध्यान नहीं दिया। एक दिन विचार उत्पन्न हुआ कि इसको आपिशल शिक्षा सूत्र से मिलाया जाय। तब हमने सन् १६४६ में स्वयं मुद्रापित आपिशल शिक्षासूत्रों से मिलान करना आरम्भ किया। उस तुलना में **ञमङणनमा नासिकास्थानाः** पाठ ने हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया, क्योंकि यह वर्णानुक्रम पाणिनीय शिक्षा **सूत्र** में है। आपिशलशिक्षा में **ञमङणनाः** पाठ है। इसके पश्चात् तृतीय प्रकरण के **विवृतकरणा वा** सूत्र ने यह बोध कराया कि सम्भव है यह शिक्षा पाणिनीय शिक्षा ही हो, आपिशल शिक्षा न हो। इस दृष्टि से सम्पूर्ण सूत्रों की तुलना स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षासूत्रों के साथ की, तब यह निश्चय हो गया कि जहां जहां भी अमूल्यचरण विद्याभूषण द्वारा प्रकाशित शिक्षा का पाठ आपिशल शिक्षा से भिन्न है वहां वह सर्वत्र स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षासूत्रों से मिलता है। इस तुलना से इतना निश्चय हो गया कि यह पाठ पाणिनीय शिक्षा का ही है, आपिशल शिक्षा का नहीं।

इस पर विचार उत्पन्न हुआ कि श्री अमूल्यचरणजी ने इस ग्रन्थ के ऊपर **आपिशली शिक्षा** शीर्षक किस आधार पर छापा। इसके लिए हमने उनकी भूमिका पढ़ी। उसमें उन्होंने इस हस्तलेख के सम्बन्ध में कहीं पर भी नहीं लिखा कि कोश के आदि वा अन्त में 'आपिशली शिक्षा' नाम का उल्लेख है। प्रतीत होता है अमूल्यचरणजी ने अष्टम प्रकरण के—

स एवमापिशलेः पञ्चदशभेदाख्या वर्णधर्मा भवन्ति ॥ ८ ॥

सूत्र में आपिशलि नाम देखकर ग्रन्थ के आद्यन्त में आपिशली शिक्षा का नाम जोड़ दिया।

अमूल्यचरणजी द्वारा प्रकाशित पाठ अत्यन्त भ्रष्ट है। केवल उसी के आधार पर उस ग्रन्थ का सम्पादन कठिन है। सम्भवतः इसी कारण अमूल्यचरणजी ने हस्तलेख के अनुरूप ही उसे यथातथरूप में छाप दिया। इससे यह भी प्रतीत होता है कि उन्हें डा० रघुवीरजी द्वारा प्रकाशित आपिशल शिक्षा और स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित पाणिनीय शिक्षा का ज्ञान नहीं था, अन्यथा वे उनकी सहायता से ग्रन्थ का सम्पादन कर सकते थे।

हमने उक्त दोनों शिक्षा सूत्रों के आधार पर तथा विविध ग्रन्थों में उद्धृत सूत्रों के साहाय्य से इस अमूल्य निधि का सम्पादन किया है। जब हमने इस ग्रन्थ के पाठ का सम्पादन कर लिया, तब इस पाठ और स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित पाठ की तुलना से विदित हुआ कि हमारे द्वारा सम्पादित शिक्षा पाठ वृद्धपाठ है और स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित पाठ लघुपाठ है। अनेक प्राचीन ग्रन्थों के वृद्ध और लघु पाठ उपलब्ध होते हैं। पाणिनि के सूत्रपाठ धातुपाठ गणपाठ उणादिपाठ सभी के लघु और वृद्ध पाठ हैं।[1] इसी प्रकार उसकी सूत्रात्मिका शिक्षा के भी वृद्ध और लघु पाठ हों तो आश्चर्य ही क्या है। प्राचीन परम्परा के अनुसार वृद्ध और लघु दोनों प्रकार के पाठ एक ही आचार्य द्वारा विभिन्न प्रकार से प्रवचन[2] के कारण उपन्न हुए हैं।

---

१. इन पाठों के विषय में हमारे 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' के तत्तत् प्रकरण देखिए।

२. प्राचीन आचार्य शास्त्रीय ग्रन्थ लिखा नहीं करते थे, अपि तु पढ़ाया करते थे, अतः वे प्रोक्त कहाते थे।

अब हम पाणिनीय शिक्षा के दोनों पाठों की कुछ तुलना उपस्थित करते हैं—

लघु पाठ	वृद्ध पाठ
[वर्णास्] त्रिषष्टिः	स्थानकरणप्रयत्नेभ्यो वर्णास्त्रिषष्टिः ।४।
	चतुःषष्टिरित्येके ।५।
	[इति] संयुक्ता वर्णाः ।१।२४।
आभ्यन्तरस्तावत्	स्वस्थान आभ्यन्तरस्तावत् ।३।४।।
	तेभ्य ए ओ विवृततरौ ।३।६।।
	ताभ्यामै औ ।३।१०।।
	ताभ्यामाकारः ।।३।११।।
	कादयो मावसानाः स्पर्शाः ।४।८।।
	यादयोऽन्तस्थाः ।४।६।।
अवर्णो ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन चानुनासिक्य-भेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मकः ।	एवं व्याख्याने वृत्तिकाराः पठन्ति-अष्टादश-प्रभेदमवर्णकुलमिति । तत्कथमुक्तम्—
	ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च
	त्रैस्वर्योपनयेन च ।
	आनुनासिक्यभेदाच्च
	संख्यातोऽष्टादशात्मकः ।६।१२।।
	उत्साहः प्रयत्नः ।७।६।।
	स्पृष्टतादिर्वर्णगुणः ।७।७।।

इन उद्धरणों के विपरीत लघुपाठ में ऐसे पाठ भी हैं, जो वृद्धपाठ में लघुरूप में हैं अथवा नहीं हैं । यथा—

लघु पाठ	वृद्ध पाठ
द्वे द्वे वर्णे सन्ध्यक्षराणा-मारम्भके भवत इति ।	द्विवर्णानि सन्ध्यक्षराणि ।

सप्तम प्रकरण के निम्न २-५ सूत्र वृद्धपाठ में नहीं हैं—

तत्रैते कौशिकीयाः श्लोकाः—
सर्वान्तेऽयोगवाहत्वाद् विसर्गादिरिहाष्टकः ।
अकार उच्चारणार्थो व्यञ्जनेष्वनुबध्यते ।।
ᳵकᳵ पयोः कपकारौ च तद्वर्गीयाश्रयत्वतः ।
पलक्क्नी चख्ख्नतुर्जग्ग्मर्जग्घ्नुरित्यत्र यद् वपुः ।।
नासिक्येनोक्तं कादीनां त इमेऽयमाः । तेषामुकारः संस्थानवर्गीयलक्षकः ।।

लघु पाठ में यह सर्वत्र आवश्यक नहीं कि उस पाठ में वृद्धपाठ की अपेक्षा लघुत्व ही हो। समूहावलम्बन से लघुत्व और वृद्धत्व देखा जाता है। लघुपाठ के सप्तम प्रकरण के जो सूत्र उद्धृत किए हैं, उन में यह भी सम्भावना हो सकती है कि लघुपाठ के किसी हस्तलेख में ये श्लोक किसी पाठक ने ग्रन्थान्तर से ग्रन्थ के प्रान्त (हाशिये) पर लिखे हों और उत्तर काल के प्रतिलिपिकर्ता ने उन्हें छूटा हुआ पाठ मानकर मूल में सन्निविष्ट कर दिया हो।

यतः जब तक लघु पाठ का अन्य हस्तलेख उपलब्ध न हो जाए, कुछ समस्याएं ही बनी रहेंगी।

चान्द्र शिक्षा

आचार्य चन्द्रगोमी एक प्रसिद्ध प्राचीन बौद्ध वैयाकरण थे। इसने कश्मीर के महाराज अभिमन्यु के आदेश से नष्टप्रायः महाभाष्य का उद्धार किया था। यह वृत्तान्त कल्हण की राजतरङ्गिणी और भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय में भले प्रकार लिखा है।

चन्द्रगोमी ने पाणिनीय अष्टाध्यायी और महाभाष्य के आधार पर अपने व्याकरण की रचना की है। सम्प्रति उसके व्याकरण के छः अध्याय मिलते हैं। शेष दो अध्याय जिनमें स्वर और वैदिक प्रकरण था, लुप्त हैं। इन लुप्त अध्यायों के अनेक प्रमाण और सूत्र उसके वृत्ति ग्रन्थ में उपलब्ध होते हैं।

आचार्य चन्द्रगोमी के समय और उसके व्याकरण के विषय में हमने अपने "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास" नामक ग्रन्थ में विस्तार से लिखा है।

आचार्य चन्द्रगोमी ने जैसे पाणिनीय व्याकरण के आधार पर अपने व्याकरण की रचना की, उसी प्रकार पाणिनीय शिक्षासूत्रों के आधार पर उसने अपने वर्णसूत्र लिखे थे। ये वर्णसूत्र जर्मन के छपे चान्द्र व्याकरण के अन्त में रोमन अक्षरों में मुद्रित हैं।

चान्द्र शिक्षा का पाठ मनोमोहन घोष ने स्वसम्पादित पाणिनीय शिक्षा के अन्त में भी छापा है। वह जर्मन मुद्रित पाठ की अपेक्षा अशुद्ध है। पुनरपि हमने उससे कुछ पाठान्तर संगृहीत कर दिए हैं।

शिक्षा-शास्त्र के विषय में विस्तृत विवेचना हम शिक्षा-शास्त्र के इतिहास में करेंगे।

भारतीय प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, अजमेर
मार्गशीर्ष कृ० ३० सं० २०२३

युधिष्ठिर मीमांसक

ओम्

अथ आपिशलशिक्षा

१. आकाशवायुप्रभवः शरीरात्
समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः।
स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो
वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः।

२. तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं
गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः।
स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव
सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति।

३. स्थानमिदं, करणमिदं,
प्रयत्न एष द्विधाऽनिलः
स्थानं पीडयति, वृत्तिकारः
प्र[1] क्रम एषो, ऽथ नाभितलात्॥

४. तत्र स्थानकरणप्रयत्नेभ्यो वर्णास्त्रिषष्टिः।

५. तत्र वर्णानां केषां किं स्थानं किं करणं प्रयत्नश्च कः केषामित्युच्यते।

---

१. सप्तमप्रकरणस्य प्रथमसूत्रे 'क्रम' शब्द एव न तु प्रक्रमः। तस्य 'पीडयति' क्रियया सम्बन्धः। छन्दोवत्सूत्राणि भवन्तीति नियमात् क्रियायाः परो व्यवहितश्चेह प्रयुक्तः।

१—स्थानप्रकरणम्

१. तत्र स्थानं तावत् ।
२. अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः ।[1]
३. हविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम् ।
४. जिह्वामूलीयो जिह्व्यः ।
५. कवर्गावर्णानुस्वारजिह्वामूलीया जिह्व्या एकेषाम् ।
६. सर्वमुखस्थानमवर्णमेके ।
७. इचुयशास्तालव्याः ।
८. ऋटुरषा मूर्धन्याः ।
९. रो दन्तमूलस्थानमेकेषाम् ।
१०. लृतुलसा दन्त्याः ।
११. वकारो दन्तोष्ठ्यः ।
१२. सृक्वस्थानमेके ।
१३. उपूपध्मानीया ओष्ठ्याः ।
१४. अनुस्वारयमा नासिक्याः ।
१५. कण्ठनासिक्यमनुस्वारमेके ।
१६. यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीया एकेषाम् ।
१७. एदैतौ कण्ठतालव्यौ ।
१८. ओदौतौ कण्ठोष्ठ्यौ ।
१९. ञमङणनाः स्वस्थाना नासिकास्थानाश्च ।
२०. द्विवर्णानि सन्ध्यक्षराणि ।
२१. सरेफ ऋवर्णः ।[2]
२२. एवमेतानि स्थानानि ।

---

१. आपिशलशिक्षायाः पाणिनीयशिक्षायाश्च सूत्राणि प्रायेण सदृशानि । तत्र न्यासपदमञ्जर्योः काशिकायां च यानि शिक्षासूत्राण्युद्धृतानि तानि पाणिनीयानीति कृत्वा तदुद्धरणस्थानानि पाणिनीयशिक्षासूत्रेष्वेव प्रदर्शयिष्यन्ते । इह येन साक्षाद् आपिशलिनाम्ना सूत्राण्युद्धृतानि तेषामेव निर्देशः करिष्यते ।

२. इतोऽग्रे 'सलकार लृवर्णः' इति सूत्रमपेक्षते । चतुरध्यायिकानाम्याथर्वण-परिशिष्टे 'सलकारम् लृवर्णम्' (१।३९) इति सूत्रं पठ्यते ।

२—करणप्रकरणम्

१. करणमपि ।

२. जिह्व्यतालव्यमूर्धन्यदन्त्यानां जिह्वाकरणम् ।[1]

३. कथमिति ?

४. जिह्वामूलेन जिह्व्यानाम् ।

५. जिह्वामध्येन तालव्यानाम् ।

६. जिह्वोपाग्रेण मूर्धन्यानाम् ।

७. जिह्वाग्राधः करणं वा ।

८. जिह्वाग्रेण दन्त्यानाम् ।

९. शेषाः स्वस्थानकरणाः ।[2]

१०. इत्येतत् करणम् ।

३—अन्तःप्रयत्नप्रकरणम्

१. प्रयत्नो द्विविधः ।

२. आभ्यन्तरो बाह्यश्च ।

३. आभ्यान्तरस्तावत् ।

४. स्पृष्टकरणाः स्पर्शाः ।

५. ईषत्स्पृष्टकरणा अन्तस्थाः ।

६. ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः ।

---

१. इत आरभ्य नवमसूत्रान्तानि अष्टौ सूत्राणि हैमबृहन्न्यासे (१।१।१७, पृष्ठ २४) नामनिर्देशं विनोद्धृतानि । तत्रैव (१।१।१७) बृहद्वृत्तौ हेमचन्द्राचार्य आपिशलिनामनिर्देशपुरःसरम् अष्टमप्रकरणस्य सूत्राण्युद्धृतवान्, अत इमान्यप्यापिशलान्येवेति विज्ञायते ।

२. 'शेषाः [स्व]स्थानकरणाः' इत्यापिशलिशिक्षावचनात् । तै० प्राति० २।४६, वैदिकाभरण-टीका, पृष्ठ ९० ।

७. विवृतकरणाः स्वराः ।[1]
८. तेभ्य ए ओ विवृततरौ ।
९. ताभ्यामै औ ।
१०. [ताभ्यामप्याकारः ।][2]
११. संवृतोऽकारः ।
१२. इत्येषोऽन्तःप्रयत्नः ।

४—बाह्यप्रयत्नप्रकरणम्

१. अथ बाह्यः ।
२. वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसविसर्जनीयजिह्वामूलि
प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः श्वासानुप्रदाना अघोष
३. वर्गयमानां प्रथमे अल्पप्राणा इतरे सर्वे महाप्राण
४. वर्गाणां तृतीयचतुर्थाः अन्तस्था हकारानुस्वारौ
संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तः ।
५. वर्गयमानां तृतीया अन्तस्थाश्चाल्पप्राणा इतरे स
६. यथातृतीयास्तथा पञ्चमाः ।
७. आनुनासिक्यमेषामधिको गुणः ।
८. शादय उष्माणः ।[3]
९. सस्थानेन द्वितीयाः ।
१०. हकारेण चतुर्थाः ।
११. एष बाह्यः प्रयत्नः ।

---

१. इत आरभ्य 'संवृतोऽकारः' इत्यन्तानि पञ्च सूत्रा
उद्ध्रियन्ते (द्र० पत्र ३ ख)। अत्राह ग्रन्थकारः—'विवृ
शिक्षावाक्यात् । पञ्चमपत्रस्य कपृष्ठे त्वाह—'प्रागुक्तं तु
तेनानुमीयते शब्दभाष्यकार आपिशलीयान्येव सूत्राण्युद्धार

२. सूत्रमेतदत्र त्रुटितं स्यात् शब्दभाष्ये पाणिनीयपा

३. इतः पूर्वं पाणिनीयशिक्षाया वृद्धपाठे 'कादयो म
ऽन्तस्थाः इति द्वे सूत्रे दृश्येते। ते अत्र त्रुटिते इति ज्ञायते,
इत्यप्रासङ्गिकः स्यात् ।

५—स्थानपीडनप्रकरणम्

१. तत्र स्पर्शयमवर्णकारो[1] वायुरयःपिण्डवत् स्थानमभिपीडयति।

२. अन्तस्थवर्णकारो[1] वायुर्दारुपिण्डवत्।

३. ऊष्मस्वरवर्णकारो[1] वायुरूर्णापिण्डवत्।

६—वृत्तिकारप्रकरणम्

१. एवं व्याख्याने वृत्तिकाराः पठन्ति--अष्टादशप्रभेदमवर्णकुलमिति। अत्र[2]—

२. ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन च।
आनुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मकः॥ इति[3]।

३. एवमिवर्णादयः।

४. लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति।

५. तं द्वादशप्रभेदमाचक्षते।

६. यदृच्छाशक्तिजानुकरणा वा यदा दीर्घाः स्युस्तदा तमप्यष्टादशप्रभेदं ब्रुवते।

७. सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति।

८. तान्यपि द्वादशप्रभेदानि।

९. छन्दोगानां सात्यमुग्रिराणायनीया (नां ?) ह्रस्वानि पठन्ति।

१०. तेषामप्यष्टादशप्रभेदानि।

११. अन्तस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिताः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च।

१२. रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति।

१३. वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः।

---

१. '०वर्णकरो वायु०' पाठ आपिशलशिक्षाया इति हैमबृहन्न्यासे तैत्तिरीयप्रातिशाख्यस्य च वैदिकाभरणटीकायामुद्धृतैः पाठैः प्रतीयते। हैमबृहन्न्यासे (१।१।१७, पृ० २४) नामनिर्देशं विना अस्य प्रकरणस्य त्रीण्यपि सूत्राण्युद्ध्रियन्ते। वैदिकाभरणटीकाकृत्तु 'तदुक्तमापिशलशिक्षायाम्' इत्येवं निर्दिश्य त्रीण्यपि सूत्राण्युद्धृतवान् (तै० प्रा० २३।२)। उभयत्रापि प्रथमसूत्रे 'तत्र' पदं च नास्ति।

२. 'तत् कथम्' इति पाठान्तरम्।

३. श्लोकोऽयं कस्याश्चित् प्राचीनशिक्षात उद्धृत इतीतिकरणात् प्रतीयते।

७—प्रक्रमप्रकरणम्

१. एष क्रमो वर्णानाम् ।

२. तत्रैषां स्थानकरणप्रयत्नानां व्याकरणप्रसिद्धिरुच्यते ।

३. इह यत्र स्थाने वर्णा उपलभ्यन्ते तत् स्थानम् ।

४. येन निर्वर्त्यन्ते तत् करणम् ।

५. प्रयतनं प्रयत्नः ।

८—नाभितलप्रकरणम्

१. [1]तत्र[2] नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन्नुरःप्रभृतीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते । स विधार्यमाणो वायुः स्थान[3]मभिहन्ति । तस्मात् स्थानाभिघाताद् ध्वनिरुत्पद्यत आकाशे, सा वर्णश्रुतिः । स वर्णस्यात्मलाभः ।

२. तत्र ध्वना [4]वुत्पद्यमाने यदा स्थानकरणप्रयत्नाः परस्परं स्पृशन्ति सा स्पृष्टता ।

३. यदेषत् स्पृशन्ति तदेषत्[5]स्पृष्टता ।

४. दूरेण यदा[6]स्पृशन्ति सा विवृतता ॥[7]

५. सामीप्येन यदा स्पृशन्ति[8] सा संवृतता ।

---

१. तथा चापिशलिः शिक्षामधीते—नाभिप्रदेशात्....इत्युक्त्वा त्रयोविंशतिसूत्राणि हैमबृहद्वृत्तौ (१।१।१७) उद्धृतानि ॥ 'तद्यथा—नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितो वायुरूर्ध्वमाक्रामन्नुरस्यादीनां स्थानानामन्यतमं स्थानमभिहन्ति ततः शब्दनिष्पत्तिः' इत्यादिशिक्षाकार........।" भर्तृहरिर्वाक्यपदीयस्य स्वोपज्ञवृत्तौ (काण्ड १, पृष्ठ १०४ लवपुरसंस्करणम्)। अत्र 'तद्यथा' स्थाने 'तथा' पाठोऽपेक्षते । 'तथेत्यापिशलिशिक्षादर्शनम्' इति स्वोपज्ञवृत्तेष्टीकायां वृषभदेव आह । पृ० १०५, लवपुरसंस्करणम् ।

२. 'तत्र' नास्ति, हैम०, शभा च ।

३. विधार्यमाणः स्थान०—हैम० शभा च ।

४. तत्र वर्णध्वना०—हैम० शभा च ।

५. स्पृशन्ति सा ईषत्—हैम० शभा च ।

६. 'यदा दूरेण' शभा ।

७. चतुर्थपञ्चमसूत्रयोः वैपरीत्येन हैमवृत्तौ शब्दभाष्ये च पाठ उपलभ्यते ।

८. यदा सामीप्येन स्पृशन्ति—हैम० शभा च ।

६. इत्येषोऽन्तः प्रयत्नः ।[1]

७. स इदानीं[2] प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन् मूर्ध्नि प्रतिहतो निवृत्तो यदा कोष्ठ[3]मभिहन्ति तदा कोष्ठे[4]ऽभिहन्यमाने गलबिलस्य[5] विवृतत्वाद् विवारः, संवृतत्वात् संवारो जायते[6] ।

८. तौ संवारविवारौ ।

९. तत्र यदा कण्ठबिलं[7] संवृतं भवति तदा नादो जायते ।

१०. विवृते कण्ठबिले श्वासो जायते ।[7]

११. तौ श्वासनादावनुप्रदानमित्याचक्षते ।[8]

१२. अन्ये तु ब्रुवते—अनुप्रदानमनुस्वानो घण्टानिर्ह्रादवत् ।[9]

१३. तत्र यदा स्थानाभिघातजे[10]ध्वनौ नादोऽनुप्रदीयते तदा नादध्वनिसंसर्गाद् घोषो जायते ।

१४. यदा[11] श्वासोऽनुप्रदीयते तदा श्वासध्वनिसंसर्गाद् अघोषः[12] ।

१५. सा घोषवदघोषता ।[13]

१६. महति वायौ महाप्राणः ।[14]

---

१. 'इति' नास्ति शभा । सूत्रं नास्ति—हैम० ।

२. स इदानीं बाह्यः प्रयत्नः । यदा—इति शभा ।

३. निवृत्तः कोष्ठ०—हैम० शभा च ।

४. ०हन्ति तत्र कोष्ठे—हैम० शभा च ।

५. कण्ठबिलस्य—हैम० शभा च ।

६. 'जायते' नास्ति, हैम० शभा च ।

७. तत्र यदा काण्ठबिलं विवृतं भवति तदा श्वासो जायते, संवृते तु नादः—हैम० शभा च ।

८. 'तावनुप्रदानमाचक्षते'—हैम० 'तावनुप्रदानमाचक्षते केचित्' शभा च ।

९. घण्टाह्लादवत्—हैम०, घण्टादिनिर्ह्लादवत्—शभा ।

१०. स्थानकरणाभिघातजे—हैम०, स्थानकण्ठाभिघातजे—शभा ।

११. यदा तु श्वासो—शभा ।

१२. घोषो जायते—हैम० शभा च ।

१३. सूत्रं नास्ति—हैम० शभा च ।

१४. महाप्राणता जायते—हैम० । तदुक्तं शिक्षायाम्—महति वायौ महाप्राणाः, अल्पे वायावल्पप्राणाः । वैदिकाभरणटीका, तै० प्राति० २।११, पृ० ७२, शभा च ।

१७. अल्पे वायावल्पप्राणः[1] ।

१८. साल्पप्राणमहाप्राणता ।[2]

१९. महाप्राणत्वादूष्मत्वम् ।

२०. यदा सर्वाङ्गानुसारी[3] प्रयत्नस्तीव्रो भवति, तदा गात्रस्य निग्रहः, कण्ठबिलस्य चाणुत्वं[4], स्वरस्य च[5] वायोस्तीव्रगतित्वाद् रौक्ष्यं भवति—तमुदात्तमाचक्षते ।

२१. यदा तु मन्दः प्रयत्नो भवति तदा गात्रस्य स्रंसनं, कण्ठबिलस्य[6] महत्त्वं स्वरस्य च[7] वायोर्मन्दगतित्वात् स्निग्धता भवति तमनुदात्तमाचक्षते ।

२२. उदात्तानुदात्तस्वरसन्निपातात् स्वरित इति ।[8]

२३. एवं प्रयत्नोऽभिनिर्वृत्तः कृत्स्नः प्रयत्नो भवति ।[9]

२४. अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥[10]

२५. स्पृष्टत्वमीषत्स्पृष्टत्वं संवृतत्वं तथैव च ।
विवृतत्वं च वर्णानामन्तःकरणमुच्यते ॥

२६. कालो विवारसंवारौ श्वासनादावघोषता ।
घोषोऽल्पप्राणता चैव महाप्राणः स्वरास्त्रयः ॥

२७. बाह्यं करणमाहुस्तान् वर्णानां वर्णवेदिनः ।

॥ इत्यापिशलिशिक्षासूत्राणि समाप्तानि ॥

---

१. अल्पप्राणता—हैम०शभा च । षोडशसप्तदशयोः सूत्रयोर्वैपरीत्येन पाठः—हैम० शभा च ।

२. सूत्रं नास्ति—हैम० शभा च । ३. सर्वगात्रानुसारी—शभा ।

४. कण्ठबिलस्याणुत्वं—शभा । ५. स्वरस्य वायोश्च तीव्र०—शभा ।

६. बिलस्य च महत्त्वं—शभा । ७. स्वरस्य वायोश्च मन्द०—शभा ।

८. अग्रिमसूत्राणि नोद्धृतानि—शभा ।

९. एष कृत्स्नो बाह्यः प्रयत्नः—हैम० ।

१०. 'यदाहुः' इत्युक्त्वोदाहृतः—हैम० ।

ओम्

अथ पाणिनीयशिक्षा

[वृद्ध-पाठः[1]]

१. आकाशवायुप्रभवः शरीरात्
समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः ।
स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो
वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः ।

२. तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं
गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः ।
स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव
सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति ।

३. स्थानमिदं, करणमिदं,
प्रयत्न एष द्विधा,ऽनिलः
स्थानं पीडयति, वृत्तिकारः
प्र क्रम एषो, ऽथ नाभितलात् ।।

४. स्थानकरणप्रयत्नपरेभ्यो वर्णास्त्रिषष्टिः ।

५. चतुःषष्टिरित्येके ।[2]

६. तत्र वर्णानां केषां किं स्थानं किं करणं प्रयत्नश्च ते, द्विधा विजभते (?)

---

१. पाणिनेः शिक्षासूत्राणामाष्टाध्यायीवद् द्वौ पाठौ स्तः । एको लघुः, अपरो वृद्धः । तत्र लघुपाठोऽसम्पूर्ण एवोपलभ्यत इति कृत्वाऽग्रे मुद्रितः । अयं वृद्धपाठो यथा महता प्रयत्नेन पूरितस्तस्य वृत्तं भूमिकायां द्रष्टव्यम् ।

२. तुलना कार्या--त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते स्थिताः (मताः) इत्यर्वाचीनायां पाणिनीयशिक्षानाम्ना प्रसिद्धायां शिक्षायाम् ।

१—स्थानप्रकरणम्

१. तत्र स्थानं तावत्।

२. अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः।[1]

३. हविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम्।

४. जिह्वामूलीयो जिह्व्यः।

५. कवर्गावर्णानुस्वारजिह्वामूलीया जिह्व्या एकेषाम्।

६. सर्वमुखस्थानमवर्णमित्येके।[2]

७. कण्ठ्यानास्यमात्रानित्येके।

८. इचुयशास्तालव्याः।[3]

९. ऋटुरषा मूर्धन्याः।[4]

१०. रेफो दन्तमूलीय एकेषाम्।

११. दन्तमूलस्तु तवर्गः।

१२. लृतुलसा दन्त्याः।[5]

१३. वकारो दन्त्योष्ठ्यः।

१४. सृक्किणीस्थानमेकेषाम्।

१५. उपूपध्मानीया ओष्ठ्याः।[6]

१६. अनुस्वारयमा नासिक्याः।[7]

---

१. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० सूत्र ५, पृष्ठ २२; १।१।९, पृ० ५८) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृ० ५८) च।

२. तुलना कार्या—सर्वमुखस्थानमवर्णमेके इच्छन्ति। महाभाष्य १।१।९॥

३. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० सूत्र ५, पृष्ठ २२; १।१।९, पृ० ५८) पदमञ्जर्यां (१।१।९ पृष्ठ ५८) न्यायमञ्जर्यां (पृ० २०५) च।

४. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० सू० ५ पृष्ठ २०, २२; १।१।९, पृ० ५८) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृ० ५८) च।

५. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० ५, पृ० २२; १।१।९, पृ० ५८) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृ० ५८) च।

६. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० ५, पृ० २२; १।१।९, पृ० ५८) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृ० ५८) च।

७. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० ५, पृ० २५; १।१।९, पृ० ५९)।

१७. कण्ठ्यनासिक्यमनुस्वारमेके ।

१८. यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीया एकेषाम् ।

१९. ए ऐ कण्ठतालव्यौ ।[1]

२०. ओ औ कण्ठोष्ठ्यौ ।[2]

२१. ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः ।

२२. द्विवर्णानि सन्ध्यक्षराणि ।

२३. सरेफ ऋवर्णः ।[3]

२४. [इति] संयुक्ता वर्णाः ।

२५. एवमेतानि स्थानानि ।

२—करणप्रकरणम्

१. करणमपि ।

२. जिह्व्यतालव्यमूर्धन्यदन्त्यानां जिह्वा करणम् ।

३. जिह्वामूलेन जिह्व्यानाम् ।

४. जिह्वामध्येन तालव्यानाम् ।

५. जिह्वोपाग्रेण मूर्धन्यानाम ।

६. जिह्वाग्राधः करणं वा ।

७. जिह्वाग्रेण दन्त्यानाम् ।

८. शेषाः स्वस्थानकरणाः ।

९. इत्येतत् करणम् ।

---

१. उद्धृतं न्यासे (१।१।६, पृ० ५८; १।१।४८, पृ० ९२) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृ० ५८) च ।

२. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० ५, पृ० २३; १।१।६, पृष्ठ ५८; १।१।४८, पृष्ठ ९२) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृष्ठ ५८) च ।

३. द्र० येषां दर्शनमर्धमात्रा कालो रेफ ऋकारेऽस्तीति तन्मतेन·······। येषामपि दर्शनं मात्राचतुर्थभागो रेफ ऋकार इति·······। महाभाष्यप्रदीपे ८।४।१ कैयटः । अत्रापिशलशिक्षायामस्मिन् सूत्रे निर्दिष्टा टिप्पण्यपि द्रष्टव्या ।

३—अन्तःप्रयत्नप्रकरणम्

१. प्रयत्नोऽपि द्विविधः ।

२. आभ्यन्तरो बाह्यश्च ।

३. स्वस्थाने आभ्यान्तरस्तावत् ।

४. स्पृष्टकरणाः स्पर्शाः ।[1]

५. ईषत्स्पृष्टकरणा अन्तस्थाः ।[2]

६. ईषद् विवृतकरणा ऊष्माणः ।

७. विवृतकरणा वा ।

८. विवृतकरणाः स्वराः ।[3]

९. तेभ्य ए ओ विवृततरौ ।[4]

१०. ताभ्यामै औ ।[5]

११. ताभ्यामकारः ।[6]

१२. संवृतस्त्वकारः ।[7]

१३. इत्येषोऽन्तःप्रयत्नः ।

---

१. उद्धृतं न्यासे (१।१।६, पृ० ५६) पदमञ्जर्यां (१।१।६, पृ० ५७) च ।

२. उद्धृतं न्यासे (१।१।६, पृ० ५९) पदमञ्जर्यां (१।१।६, पृ० ५७) च ।

३. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० सूत्र १, पृष्ठ ८) पदमञ्जर्यां (प्रत्या० १, पृष्ठ १८) च ।

४. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० १, पृ० ८) पदमञ्जर्यां (प्रत्या १, पृ० १८) च ।

५. उद्धृतं पदमञ्जर्याम् (प्रत्या० १, पृ० १८) । न्यासे तु 'ताभ्यामपि ऐ औ' इत्येवं पाठः ।

६. 'ताभ्यामप्याकारः' इत्येवं न्यासे (प्रत्या० १; पृ० ८) पदमञ्जर्यां (प्रत्या० १, पृ० १८) च पाठः ।

७. 'संवृतोऽकारः, इत्येवं न्यासे (प्रत्या० १, पृ० ८) पदमञ्जर्यां (प्रत्या० १, पृ० १८) च पाठः ।

४—बाह्यप्रयत्नप्रकरणम्

१. अथ बाह्याः प्रयत्नाः ।

२. वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसविसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीया यमौ च प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः श्वासानुप्रदाना अघोषाः ।[1]

३. वर्गयमानां प्रथमा अल्पप्राणा इतरे सर्वे महाप्राणाः ।[2]

४. वर्गाणां तृतीयचतुर्था अन्तस्था हकारानुस्वारौ यमौ च तृतीयचतुर्थौ नासिक्याश्च संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तश्च ।[3]

५. वर्गयमानां तृतीया अन्तस्थाश्चाल्पप्राणा इतरे सर्वे महाप्राणाः ।[4]

६. यथा तृतीयास्तथा पञ्चमाः ।[5]

७. आनुनासिक्यमेषामधिको गुणः ।[6]

८. कादयो मावसानाः स्पर्शाः ।[7]

९. यादयोऽन्तस्थाः ।[8]

---

१. उद्धृतं न्यासे (१।१।९, पृष्ठ ५७; १।१।५०, पृष्ठ ८५) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृष्ठ ५७) च ।

२. 'वर्गयमानां प्रथमेऽल्पप्राणा इतरे महाप्राणाः' इत्येवं पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृष्ठ ५७) न्यासे (वर्ग्ययमानां' पाठा० १।१।९, पृष्ठ ५७) च पठ्यते ।

३. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० ५, पृष्ठ २५, १।१।९, पृष्ठ ५७; १।१।५०, पृष्ठ ८५) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृष्ठ ५७) च । पदमञ्जर्यां न्यासे (१।१।९, पृष्ठ ५७) उद्धरणे 'नासिक्याश्च' पदं नास्ति)

४. उद्धृतं न्यासे (१।१।९, पृष्ठ ५७,; १।१।५०, पृष्ठ ९५—पूर्वोद्धरणे 'वर्ग्य' पाठः) पदमञ्जर्यां (१।९, पृष्ठ ५८–'सर्वे' पदं नास्ति) च ।

५. उद्धृतं न्यासे (प्रत्या० ५, पृष्ठ २५; १।१।९, पृष्ठ ५७,) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृष्ठ ५८) च ।

६. उद्धृतं न्यासे (१।१।९, पृष्ठ ५७) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृष्ठ ५८) च ।

७. उद्धृतं न्यासे (१।१।९, पृ० ५७) पदमञ्जर्यां (१।१।९।५७) च

८. न्यासे (१।१।९, पृ० ५७) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृ० ५७) च 'यरलवा अन्तस्थाः' इत्येवं पठ्यते, सोऽर्थतोऽनुवादो द्रष्टव्यः ।

१०. शादय उष्माणः ।[1]

११. सस्थानेन द्वितीयाः ।[2]

१२. हकारेण चतुर्थाः ।[3]

१३. इत्येष बाह्यः प्रयत्नः ।

५—स्थानपीडनप्रकरणम्

१. तत्र स्पर्शयमवर्णकरो वायुरयःपिण्डवत् स्थानमभिपीडयति ।

२. अन्तस्थवर्णकरो वायुर्दारुपिण्डवत् ।

३. ऊष्मस्वरवर्णकारो वायुरूर्णापिण्डवत् ।

६—वृत्तिकारप्रकरणम्

१. एवं व्याख्याने वृत्तिकाराः पठन्ति—अष्टादशप्रभेदमवर्णकुलमिति । तत्कथमुक्तम्

२. ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन च ।
आनुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मकः ॥ इति ।

३. एवमिवर्णादयः ।

४. ऌवर्णस्य दीर्घा न सन्ति ।[4]

५. तं द्वादशप्रभेदमाचक्षते ।[5]

६. यदृच्छाशब्देऽशक्तिजानुकरणे वा यदा दीर्घाः स्युस्तदाऽष्टादशप्रभेदं ब्रुवते क्लृपक इति ।

---

१. उद्धृतं न्यासे (१।१।५० पृष्ठ ९६, पदमञ्जर्यां (१।१।५०, पृष्ठ ९७) च । यत्तु न्यासे (१।१।९, पृष्ठ ५७) पदमञ्जर्यां (१।१।९, पृ० ५७) च 'शषसहा उष्माणः ' इत्येवं पाठ उपलभ्यते सोऽर्थतोऽनुवादो द्रष्टव्यः ।

२. उद्धृतं न्यासे (१।१।५०, पृष्ठ ९६, ९७) पदमञ्जर्यां (१।१।५० पृष्ठ ९७) च ।

३. उद्धृतं न्यासे (१।१५०, पृ० ९६, ९७) पदमञ्जर्यां (१।१।५०, ९७) च ।

४. उद्धृतं काशिकायाम् (१।१।९) ।

५. उद्धृतं काशिकायाम् (१।१।९) ।

७. सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति ।[1]

८. तान्यपि द्वादशप्रभेदानि ।[2]

९. छन्दोगानां सात्यमुग्रिराणायनीया अर्धमेकारमर्धमोकारं [च] पठन्ति ।[3]

१०. तेषामष्टादशप्रभेदानि ।

११. अन्तस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिताः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च ।[4]

१२. रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति ।[5]

१३. वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः ।[6]

७—प्रक्रमप्रकरणम्

एष क्रमो वर्णानाम् ।

२. तत्रैषां स्थानकरणप्रयत्नानां कथंप्रसिद्धिरित्युच्यते ।

३. इह यत्र स्थाने वर्णा उपलभ्यन्ते तत् स्थानम् ।

४. येन निर्वर्त्यन्ते तत् करणम् ।

५. प्रयतनं प्रयत्नः ।[7]

६. उत्साहः प्रयत्नः ।

७. स्पृष्टतादि वर्णगुणः ।

---

१. उद्धृतं काशिकायाम् (१।१।९) । 'पाणिनीयेऽपि' इत्येवं कृत्वोद्धृतः तैत्तिरीयप्रतिशाख्यस्य त्रिरत्नभाष्ये (मैसूर सं० पृ० ४५०) ।

२. उद्धृतं काशिकायाम् (१।१।९) ।

३. तुलना कार्या—ननु च भोश्छन्दोगानां सात्युमुग्रिराणायनीया अर्धमेकारमर्धमोकारं चाधीयते इति । महाभाष्ये प्रत्या० ३; १।१।४७ सूत्रे च ।

४. स्वल्पपाठान्तरेणोद्धृतं काशिकायाम् (१।१।९) पदमञ्जर्यां (प्रत्या० ६, पृ० ३३) च ।

५. उद्धृतं महाभाष्ये (प्रत्या० ५) काशिकायां (१।१।९) पदमञ्जर्यां (प्रत्या० ५) न्यासे (प्रत्या० ५) च ।

६. उद्धृतं महाभाष्यदीपिकायां (पृष्ठ १८४हस्त०) काशिकायां (१।१।९) च

७. उद्धृतं महाभाष्ये (१।१।९) ।

८—नाभितलप्रकरणम्

१. [1]तत्र नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः प्राणो[2] नाभिवायुरुर्ध्वमाक्रामन्नुरआदीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते । विधार्यमाणः सोऽपि तत्स्थानानि विहन्ति[3] । तस्मात् स्थानाभिघाताद् ध्वनिरुत्पद्यत आकाशे, सा वर्णश्रुतिः । स वर्णस्यात्मलाभः ।

२. तत्र वर्णानामुत्पद्यमाने[4] यदा स्थानकरणप्रयत्नपर्यन्तं परस्परं स्पृशति[5] सा स्पृष्टता ।

३. यदेषत् स्पृशति[6] सा ईषत्स्पृष्टता ।

४. यदा दूरेण स्पृशति[7] सा विवृता[8] ॥

५. यदा सामीप्येन स्पृशति[9] सा संवृता ।[10]

६. एषोऽन्तः प्रयत्नः ।[11]

७. अथ बाह्यः प्रयत्नः ।[11]

८. स एवेदानीं प्राणो नाभिवायुरु[12]र्ध्वमाक्रम्य मूर्ध्नि प्रतिहते[13] निवृत्तो

---

१. न्यासे (१।१।९, पृष्ठ ५६, ५७) ऽस्य प्रकरणस्य १–२३ सूत्राण्युद्धृतानि।

२. प्राणो नाम उर्ध्वमाक्रमन्नुरःप्रभृतीनामन्यतमस्मिन्—न्यासे । द्रष्टव्यमत्रास्यैव प्रकरणस्याष्टमे चतुर्दशे च सूत्रे नाभिपदम् । लघुपाठे तु 'प्राणो नाम' इत्येव पठ्यते ।

३. स विधार्यमाणः स्थानमभिहन्ति । ततः—न्यासे ।

४. वर्णध्वनावुत्पद्याने—न्यासे ।

५. ० प्रयत्नाः परस्परं स्पृशन्ति—न्यासे ।

६. ईषद् यदा स्पृशन्ति—न्यासे ।

७. दूरेण यदा स्पृशन्ति—न्यासे न्यासे तु चतुर्थपञ्चमसूत्रयोः पौर्वापर्यं विद्यते ।

८. द्रष्टव्यमत्रस्यैव प्रकरणम् २६ षड्विंशं सूत्रम् ।

९. समीप्येन यदा स्पृशन्ति—न्यासे ।

१०. द्रष्टव्यमत्रास्यैव २६ षड्विंशं सूत्रम् ।

११. नास्ति सूत्रम् — न्यासे ।

१२. स एव प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन्— न्यासे ।

१३. प्रतिहतो०—न्यासे ।

तदा कोष्ठे संहन्यमाने[1] गलबिलस्य संवृतत्वात् संवारो नाम वर्णधर्मो जायते[2], वृितत्वाद् विवारः ।

९. तौ संवारविवारौ ।[3]

१०. तत्र यदा कण्ठबिलं संवृतत्वं तदा नादो जायते ।[4]

११. विवृते तु कण्ठबिले श्वासोऽनुजायते ।[5]

१२. तौ श्वासनादावनुप्रदानावित्याचक्षते ।[6]

१३. अन्ये श्वासनादानुप्रदानं व्यञ्जने नादवत् ।[7]

१४. तत्र यदा नाभिस्थलजध्वनौ[8] नादोऽनुप्रदीयते तदा नादध्वनिसंसर्गाद्[9] घोषो जायते ।

१५. यदा श्वासोऽनुप्रदीयते तदा श्वास[ध्वनि]संसर्गाद्[10] अघोषो जायते ।[11]

१६. सा घोषवदघोषता ।[12]

१७. महति वायौ महाप्राणः ।

१८. अल्पे वायावल्पप्राणः ।

१९. साल्पप्राणमहाप्राणता ।[13]

---

१. निवृत्तो यदा कोष्ठमभिहन्ति तदा कोष्ठेऽभिहन्यमाने--न्यासे ।
२. वर्णधर्मं उपजायते—न्यासे ।
३. नास्ति सूत्रं--न्यासे ।
४. संवृते गलबिलेऽव्यक्तः शब्दो नादः—न्यासे । न्यासेऽर्थतोऽनुवादः स्यात् ।
५. विवृते श्वासः--न्यासे । न्यासेऽर्थतोऽनुवादः स्यात् ।
६. तौ श्वासनादानुप्रदानाविति केचिदाचक्षते—न्यासे ।
७. अन्ये तु ब्रुवते अनुप्रदानमनुस्वानो घण्टानिर्ह्रादवत्--न्यासे ।
८. यदा स्थानाभिघातजे ध्वनौ—न्यासे ।
९. ० ध्वनिसंगाद्—न्यासे
१०. ० ध्वनिसंगाद्—न्यासे ।
११. जायते—नास्ति न्यासे ।
१२. सूत्रं नास्ति—न्यासे ।
१३. सूत्रं नास्ति—न्यासे ।

२०. [यत्र] महाप्राणत्वम् ऊष्माणस्ते ।[१]

२१. तत्र[२] यदानुसारिप्रयत्नस्तीव्रो भवति तदा गात्राणां[३] निग्रहः, कण्ठबिलस्य चाल्पत्वं[४] स्वरस्य च वायोस्तीव्रगतित्वाद् रौक्ष्यं भवति—तमुदात्तमाचक्षते ।

२२. यदा मन्दः प्रयत्नो भवति तदा गात्राणां[५] प्रसन्नत्वं कण्ठबिलस्य च बहुत्वं[६] स्वरस्य च वायोर्मन्दगतित्वात् स्निग्धता भवति । तमनुदात्तमाचक्षते ।

२३. उदात्तानुदात्त[७]सन्निकर्षात् स्वरित इति ।

२४. स एवं प्रयत्नोऽभिनिवृत्तः कृत्स्नः प्रयत्नो भवति ।

२५. स एवमापिशलेः पञ्चदशभेदाख्या वर्णधर्मा भवन्ति ।

२६. तद्यथा—स्पृष्टता ईषत्स्पृष्टता विवृता संविवृता च ।
संवारविवारौ श्वासनादौ घोषवदघोषता ।
अल्पप्राणमहाप्राणता उदात्तानुदात्तस्वरिता इति ।

२७. इदानीं शिक्षाग्रन्थः श्लोकैरुपसंह्रियते—

२८. अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥

२९. स्पृष्टत्वमीषत्स्पृष्टत्वं संवृतत्वं तथैव च ।
विवृतत्वं च वर्णानामन्तःकरणमुच्यते ॥

३०. कालो विवारसंवारौ श्वासनादावघोषता ।
घोषोऽल्पप्राणता चैव महाप्राणः स्वरास्त्रयः ॥

३१. बाह्यं करणमाहुस्तान् वर्णानां वर्णवेदिनः ॥

* इति पाणिनीयशिक्षासूत्राणां वृद्धपाठः समाप्तः *

---

१. सूत्रं नास्ति—न्यासे ।
२. तत्र—नास्ति । यदा सर्वाङ्गानुसारी—न्यासे ।
३. गात्रस्य—न्यासे ।
४. कण्ठविवरस्य चाणुत्वं—न्यासे
५. गात्रस्य स्रंसनं—न्यासे ।
६. महत्त्वं—न्यासे ।
७. उदात्तानुदात्तस्वरसन्निकर्षात्—न्यासे ।

ओम्

अथ पाणिनीयशिक्षा

[लघु-पाठः[1]]

१. आकाशवायुप्रभवः शरीरात्
समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः ।
स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो
वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः ।

२. तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं
गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः ।
स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव
सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति ।

३. [वर्णास्] त्रिषष्टिः ।

४. स्थानमिदं, करणमिदं,
प्रयत्न एष द्विधा, ऽनिलः
स्थानं पीडयति, वृत्तिकारः
प्र क्रम एषो, ऽथ नाभितलात् ।।

---

१. पाणिनीयशिक्षासूत्राणामयं पाठो श्रीमद्भगवत्पाददयानन्दसरस्वतीभिर्महता प्रयत्नेनोपलभ्य १९३६ वैक्रमाब्दे आर्यभाषयाऽनूद्य "वर्णोच्चारण-शिक्षा" नाम्ना प्रकाशितः । भगवत्पादैरस्याः शिक्षाया यः कोश उपलब्ध आसीत् स मध्ये मध्ये लेखकदोषात् त्रुटितः, अन्ते च खण्डितोऽभूत् । विशेषो भूमिकायां द्रष्टव्यः ।

१—स्थानप्रकरणम्

१. अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः ।
२. हविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम् ।
३. जिह्वामूलीयो जिह्वयः ।
४. कवर्ग ऋवर्णश्च जिह्वयः ।
५. सर्वमुखस्थानमवर्णमित्येके ।
६. कण्ठ्यानास्यमात्रानित्येके ।
७. इचुयशास्तालव्याः ।
८. ऋटुरषा मूर्धन्याः ।
९. रेफो दन्तमूलीय एकेषाम् ।
१०. दन्तमूलस्तु तवर्गः ।
११. लृतुलसा दन्त्याः ।
१२. वकारो दन्त्योष्ठ्यः ।
१३. सृक्किणीस्थानमेकेषाम् ।
१४. उपूपध्मानीया ओष्ठ्याः ।
१५. अनुस्वारयमा नासिक्याः ।
१६. कण्ठ्यनासिक्यमनुस्वारमेके ।
१७. यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीया एकेषाम् ।
१८. एदैतौ कण्ठ्यतालव्यौ ।
१९. ओदौतौ कण्ठ्योष्ठ्यौ ।
२०. ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः ।
२१. द्वे द्वे वर्णे सन्ध्यक्षराणामरम्भके भवत इति ।
२२. सरेफ ऋवर्णः ।

२—करणप्रकरणम्

१. जिह्वयतालव्यमूर्धन्यदन्त्यानां जिह्वा करणम् ।
२. जिह्वामूलेन जिह्वयानाम् ।

३. जिह्वामध्येन तालव्यानाम् ।[१]

४. जिह्वोपाग्रेण मूर्धन्यानाम् ।

५. जिह्वाग्राधः करणं वा ।

६. जिह्वाग्रेण दन्त्यानाम् ।

७. इत्येतदन्तःकरणम् ।

३—अन्तःप्रयत्नप्रकरणम्

१. प्रयत्नोऽपि द्विविधः ।

२. आभ्यन्तरो बाह्यश्च ।

३. आभ्यान्तरस्तावत् ।

४. स्पृष्टकरणाः स्पर्शाः ।

५. ईषत्स्पृष्टकरणा अन्तस्थाः ।

६. ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः ।

७. विवृतकरणा वा ।

८. विवृतकरणाः स्वराः ।

९. संवृतस्त्वकारः ।[२]

१०. इत्येषोऽन्तःप्रयत्नः ।

४—बाह्यप्रयत्नप्रकरणम्

१. अथ बाह्याः प्रयत्नाः ।

२. वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसविसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीया यमौ च प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः श्वासानुप्रदानाश्चाघोषाः ।

३. एके अल्पप्राणा इतरे महाप्राणाः ।

४. वर्गाणां तृतीयचतुर्था अन्तस्था हकारानुस्वारौ यमौ च तृतीयचतुर्थौ नासिक्याश्च संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तश्च ।

५. [एकेऽन्तस्थाश्चाल्पप्राणा इतरे सर्वे महाप्राणाः] ।[२]

६. यथा तृतीयास्तथा पञ्चमाः ।

७. आनुनासिक्यमेषामधिको गुणः ।

---

२. लेखकदोषात् सूत्रमिदं नष्टं स्यात् ।

३. लेखकप्रमादात् सूत्रमिदं नष्टं स्यात् ।

८. शादय उष्माण: ।

९. [स]स्थानेन द्वितीया: ।

१०. हकारेण चतुर्था: ।

५—स्थानपीडनप्रकरणम्

१. तत्र स्पर्शयमवर्णकरो वायुरय:पिण्डवत् स्थानमभिपीडयति ।

२. अन्तस्थवर्णकरो वायुर्दारुपिण्डवत् ।

३. ऊष्मस्वरवर्णकारो वायुरूर्णापिण्डवत् ।

४. उक्ता: स्थानकरणप्रयत्ना: ।[1]

६—वृत्तिकारप्रकरणम्

१. अवर्णो ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन चानुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मक:

२. एवमिवर्णादय: ।

३. ऌवर्णस्य दीर्घा न सन्ति ।

४. तं द्वादशभेदमाचक्षते ।

५. यदृच्छाशब्देऽशक्तिजानुकरणे वा यदा दीर्घा: स्युस्तदाऽष्टादशभेदं ब्रुवते क्लृपक इति ।

६. सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति ।

७. तान्यपि द्वादशप्रभेदानि ।

८. अन्तस्था द्विप्रभेदा[2] रेफवर्जिता: सानुनासिका निरनुनासिकाश्च ।

९. रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति ।

१०. वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्ण: ।

---

१. सप्तमप्रकरणे सूत्रमिदं पुन: पठयते, वृद्धपाठे सूत्रमिदं न त्विह पठयते न च सप्तमप्रकरणे ।

२. पूर्वत्र चतुर्थपञ्चमयो: सूत्रयो: 'भेद' इत्येव पठयते ।

७—प्रक्रमप्रकरणम्

१. एष क्रमो वर्णानाम् ।

२. तदेते कौशिकीया श्लोकाः[1]—

३. सर्वान्ते योगवाहत्वाद् [illegible] ।
अकार उच्चारणार्थो [illegible] ॥

४. ऋकार-ऌकारयोः रेफलकारौ च [illegible] ।
पाणिन्युक्तौ [illegible] ॥

५. नासिक्यैर्नोक्तं कार्याणां न क्रमोऽस्त्यतः ।
तेषामनुस्वारः संस्थानवर्णा[illegible] ।

६. उक्ताः स्थानकरणप्रयत्नाः ।[2]

७. इह यत्र स्थाने वर्णा उपलभ्यन्ते तत् स्थानम् ।

८. येन निर्वर्त्यन्ते तत् करणम् ।

९. प्रयतनं प्रयत्नः ।

८—नाभितलप्रकरणम्

१. तत्र नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन्नुर आदीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते । ....[3]

....

....

[इति पाणिनीयशिक्षासूत्राणां लघुपाठः]

---

१. पाणिनीयशिक्षाया लघुपाठे २-४ सूत्राणि न सन्ति । आपिशलिशिक्षायामपि न पठ्यन्ते । तेन लघुपाठ [illegible] । कदाचित् [illegible] सूत्राण्येतानि केनचित् पाठकेन प्रान्ते लिखितानि [illegible], [illegible] कालेन सूत्राणां मध्ये प्रविष्टानि स्युरिति संभाव्यते ।

२. वर्णोच्चारणशिक्षायामपि [illegible] सूत्राण्युत्तरप्रकरणादौ पठ्यन्ते ।

३. इतोऽग्र आप्रकरणान्तं पाठो नष्टः, कोशस्य त्रुटितत्वात् ।

अथ चान्द्रवर्णसूत्राणि

१. स्थानकरणप्रयत्नेभ्यो वर्णा जायन्ते ।

२. तत्र स्थानम् ।

३. कण्ठोऽकुहविसर्जनीयानाम् ।

४. कण्ठतालुकन् इदेदैताम् ।

५. कण्ठोष्ठम उदोदौताम् ।

६. मूर्धा ऋटुरषाणाम् ।

७. दन्ता लृतुलसानाम् ।

८. नासिकाऽनुस्वारस्य ।

९. स्वस्थानानुनासिका ङञणनमाः ।

१०. तात्विचुयशानाम् ।

११. ओष्ठावुपूपध्मानीयाम् ।[1]

१२. दन्तौष्ठं वकारस्य ।

१३. जिह्वामूलं जिह्वामूलीयस्य ।

१४. करणम् ।

१५. जिह्वाग्रं दन्त्यानाम् ।

१६. जिह्वोपाग्रं शिरस्यानाम् ।[2]

१७. जिह्वामध्यं तालव्यानाम् ।

१८. शेषाः स्वस्थानकरणाः ।

---

१. 'ओष्ठौ उपध्मानीययोः' इत्यपपाठो घोषसंस्कणे ।

२. षोडशसप्तदशे सूत्रे घोषसंस्करणे वैपरीत्येन पठ्यते ।

१९. प्रयत्नो द्विविधः ।

२०. आभ्यन्तरो बाह्यश्च ।

२१. तत्राभ्यन्तरः ।

२२. संवृतत्वं विवृतत्वं स्पृष्टत्वमीषत्स्पृष्टत्वं च ।

२३. संवृतत्वम् अकारस्य ।

२४. विवृतत्वं स्वराणामूष्मणां[1] च ।

२५. तेभ्यो विवृततरत्व[2]मेदोतोः ।

२६. ताभ्यामैदौतोः ।

२७. ताभ्यामप्यकारस्य ।

२८. स्पृष्टत्वं स्पर्शानाम् ।

२९. ईषत्स्पृष्टत्वमन्तस्थानाम् ।

३०. बाह्यः ।

३१. वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसविसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीयाश्च विवृतकण्ठाः[3] श्वासानुप्रदाना अघोषाः ।

३२. प्रथमतृतीयपञ्चमा अन्तस्थाश्चाल्पप्राणाः ।

३३. इतरे[4] महाप्राणाः ।

३४. तृतीयचतुर्थपञ्चमाः सानुस्वारान्तस्थहकाराः संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तः ।

३५. द्वितीयचतुर्थाः शषसहाश्चोष्माणः ।

३६. कादयो मावसानाः स्पर्शाः ।

३७. अन्तस्था यरलवाः ।

३८. इत्येष बाह्यप्रयत्नः ।

---

१. ऊष्मणां स्वराणां च—घोषसंस्करणे ।

२. विवृतत्वं—घोषसं० ।

३. विवृतकण्ठा नादानु०—घोषसंस्करणेऽपपाठः, एषां श्वासानुप्रदानत्वात् ।

४. इतरे सर्वे—घोषसं० ।

३९. अत्र चावर्णो ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति त्रिधा भिन्नः ।

४०. प्रत्येकमुदात्तानुदात्तस्वरितभेदेन सानुनासिकनिरनुनासिकभेदेन चाष्टादशधा भवति ।

४१. एवमिवर्णोवर्णावृवर्णश्च ।[1]

४२. लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति तेन स[2] द्वादशधा भवति ।

४३. संध्यक्षराणां ह्रस्वाभावात् तान्यपि द्वादशधा ।

४४. एकमात्रिको ह्रस्वः ।

४५. द्विमात्रिको दीर्घः ।

४६. त्रिमात्रिको प्लुतः ।

४७. उच्चैरुदात्तः ।

४८. नीचैरनुदात्तः ।

४९. समाहारः स्वरितः ।

५०. स्वस्थानानुनासिको निरनुनासिकश्च ।

५१. अन्तस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिताः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च ।

* इति चन्द्रगोमिकृतानि वर्णसूत्राणि समाप्तानि *

---

१. 'एवमिवर्णोवर्णो ऋवर्णश्च' इत्यसंहितया पाठो घोषसंस्करणे ।

२. 'स' इति नास्ति घोषसंस्क० ।